भारत में स्कूल की श्रेणी में समावेशी व संयुक्त शिक्षा के स्तर का आकलन

ये साबित हो चुका है कि समावेशी शिक्षा की आदत दिव्यांग और गैर-दिव्यांग- दोनों तरह के बच्चों के लिए फ़ायदेमंद है.

भारत में दिव्यांग बच्चों (CWD) के लिए समावेशी शिक्षा असंगत नीतियों, आंकड़ों की उपलब्धता में कमी और कामयाबी और क्वालिटी के अभाव से प्रभावित रही है. इसका नतीजा लागू करने में गंभीर अंतर और बिना योजना हस्तक्षेप के रूप में सामने आया है. वैसे तो निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, सर्व शिक्षा अभियान, दिव्यांग व्यक्तियों का अधिकार अधिनियम (RPWD एक्ट) 2016 और हाल की नई शिक्षा नीति 2020 के तहत दिव्यांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा के अधिकार को मान्यता मिली हुई है लेकिन देश में समावेशी शिक्षा के लिए एक समान स्वरूप को लेकर अस्पष्टता मौजूद है.

समावेशी शिक्षा की तरफ़ क़ानूनी और नीतिगत प्रतिबद्धता की प्रेरणा अंतर्राष्ट्रीय संधियों जैसे संयुक्त राष्ट्र के दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार पर करार का पालन करने की ज़रूरतों से मिलती है जिसे भारत ने 2007 में मंज़ूर किया था. RPWD एक्ट 2016 में समावेशी शिक्षा को उस तरह की शिक्षा प्रणाली बताया गया है जहां दिव्यांग बच्चे हों या दूसरे बच्चे, वो एक साथ बैठकर पढ़ाई करें और पढ़ाई का तरीक़ा इस तरह होता है जो अलग-अलग तरह के दिव्यांग बच्चों की ज़रूरत को पूरा करे. लेकिन सरकार की नीतियों में कई तरह के विरोधाभास हैं. आंकड़ों की अविश्वसनीयता का नतीजा देश की ज़मीनी हक़ीक़त से अलग नीतियों को बनाने के रूप में सामने आया है.

दिव्यांग बच्चे काफ़ी हद तक शिक्षा प्रणाली से अलग बने हुए हैं और उनमें से काफ़ी कम प्राथमिक शिक्षा से आगे बढ़ पाते हैं. राष्ट्रीय सैंपल सर्वे 2018 के 76वें चरण के नतीजों के मुताबिक दिव्यांग व्यक्तियों में से 48.8 प्रतिशत शिक्षित हैं और 3 से 35 वर्ष के लोगों में से सिर्फ़ 62.9 प्रतिशत ने कभी किसी नियमित स्कूल में अपना नाम लिखाया है. रिपोर्ट में ये भी कहा गया है कि दिव्यांग बच्चों में से काफ़ी कम अपनी पढ़ाई जारी रख पाते हैं और सिर्फ़ 23.1 प्रतिशत हाई स्कूल तक पहुंच पाते हैं. जेंडर और दिव्यांगता के प्रकार को लेकर भी भेदभाव मौजूद हैं. ऑटिज़्म और सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित बच्चे और दिव्यांग लड़कियों के स्कूल में शिक्षा हासिल करने की संभावना सबसे कम है. दिव्यांगता की मौजूदगी को लेकर विश्वसनीय आंकड़ों की कमी है. दिव्यांगों की संख्या कम बताई जाती है. अलग-

अलग आंकड़ों की प्रणाली जैसे जनगणना, राष्ट्रीय सैंपल सर्वे और यूनिफाइड डिस्ट्रिक्ट इन्फॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन (UDISE) के आंकड़े एक समान नहीं हैं. इसकी वजह से आंकड़ों की तुलना नहीं हो सकती.

राष्ट्रीय सैंपल सर्वे 2018 के 76वें चरण के नतीजों के मुताबिक दिव्यांग व्यक्तियों में से 48.8 प्रतिशत शिक्षित हैं और 3 से 35 वर्ष के लोगों में से सिर्फ़ 62.9 प्रतिशत ने कभी किसी नियमित स्कूल में अपना नाम लिखाया है. रिपोर्ट में ये भी कहा गया है कि दिव्यांग बच्चों में से काफ़ी कम अपनी पढ़ाई जारी रख पाते हैं और सिर्फ़ 23.1 प्रतिशत हाई स्कूल तक पहुंच पाते हैं.

दिव्यांग बच्चों के लिए अलग-अलग तरह के स्कूलों का समानांतर अस्तित्व है जिनमें नियमित स्कूल, विशेष स्कूल और घर पर शिक्षा शामिल हैं. लेकिन मंत्रालय और अलग-अलग योजनाओं को लागू करने के लिए ज़िम्मेदार विभागों के बीच कम तालमेल की वजह से और ज़्यादा दिक़्क़तें पैदा होती हैं. शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम में दिव्यांग बच्चों के लिए पड़ोस के स्कूल में दाखिले का प्रावधान है जबकि गंभीर रूप से दिव्यांग बच्चों के लिए घर पर शिक्षा का विकल्प है. दूसरी तरफ़ RPWD अधिनियम में पड़ोस के स्कूल या विशेष स्कूल में दाखिला कराने के मामले में दिव्यांग बच्चों की पसंद को मान्यता दी गई है. साथ ही इसमें साफ़ तौर पर समावेशी शिक्षा के अधिकार को परिभाषित किया गया है.

RTE अधिनियम और RPWD अधिनियम के बीच तालमेल की कमी दिव्यांग बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा को वास्तविकता में बदलने की राह में बाधा है. इससे भी बढ़कर समावेशी शिक्षा के लिए नीतिगत संवाद मुख्य रूप से दो मंत्रालयों पर निर्भर है. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय जहां विशेष शिक्षा के लिए ज़िम्मेदार है वहीं शिक्षा मंत्रालय अपने कार्यक्षेत्र में आने वाली अलग-अलग योजनाओं के तहत समावेशी शिक्षा का प्रबंधन करता है लेकिन दोनों के दृष्टिकोण में काफ़ी कम तालमेल है. इसके अलावा समावेशी शिक्षा के राज्य स्तरीय क्रियान्वयन के साथ-साथ राज्य सरकारों और केंद्र सरकार के बीच सहयोग में कमी है.

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय जहां विशेष शिक्षा के लिए ज़िम्मेदार है वहीं शिक्षा मंत्रालय अपने कार्यक्षेत्र में आने वाली अलग-अलग योजनाओं के तहत समावेशी शिक्षा का प्रबंधन करता है लेकिन दोनों के दृष्टिकोण में काफ़ी कम तालमेल है.

नई शिक्षा नीति ने शिक्षा के तीनों मॉडल : पड़ोस के स्कूल, विशेष स्कूल और घर की शिक्षा को मान्यता देकर इस अस्पष्टता को दूर करने की कोशिश की है. लेकिन घर की शिक्षा के प्रावधान बेहद विवादास्पद हैं और RPWD अधिनियम के तहत जिस समावेशी शिक्षा की कल्पना की गई थी उसकी मूल भावना के ख़िलाफ़ है क्योंकि इसमें दिव्यांग बच्चों को अलग करने का समर्थन किया गया है. इसके अलावा शिक्षा मंत्रालय द्वारा विशेष स्कूलों को मान्यता नहीं देने का मतलब है कि इन स्कूलों में शिक्षा की क्वालिटी पर नियंत्रण नहीं है यानी नई शिक्षा नीति के प्रावधान स्पेशल स्कूल में लागू नहीं होंगे. देश में कम लागत वाले बिना मदद प्राप्त प्राइवेट स्कूलों के फैलने से ये महत्वपूर्ण हो जाता है कि दिव्यांग बच्चे के लिए इन स्कूलों का सुलभ होना सुनिश्चित किया जाए. साथ ही भेदभाव रोकने के लिए क़ानूनी

प्रावधान किए जाएं. RTE अधिनियम में दिव्यांग बच्चों को सुविधाहीन छात्रों की सूची में रखा गया है ताकि बिना मदद प्राप्त प्राइवेट स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण के लिए वो योग्य हों. लेकिन इस प्रावधान को लागू नहीं किया गया है.

दिव्यांग बच्चे सुविधाहीन बच्चों की सूची से बाहर हैं और स्कूलों में उन्हें दाखिला नहीं मिल पाता. अधिनियम में दिव्यांग बच्चों के लिए बैरियर मुक्त पहुंच को भी परिभाषित नहीं किया गया है जिसकी वजह से उनकी दिक़्क़त और बढ़ जाती है.

भारत में समावेशी शिक्षा के दृष्टिकोण में पहुंच और दाखिले पर ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान दिया गया है जबकि दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा की क्वालिटी और पढ़ाई के नतीजों को नज़रअंदाज़ कर दिया गया है. एनुअल स्टेट ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (ASER), जिसको बच्चों में पढ़ाई का आकलन करने वाला माना जाता है, में दिव्यांग बच्चों को ध्यान में नहीं रखा गया है. इससे सवाल खड़े होते हैं कि किन हालात में समावेश हो रहा है.

शिक्षक अक्सर दिव्यांग बच्चों को पढ़ाने के लिए खुद को तैयार नहीं पाते हैं. साथ ही उन्हें समावेशी शिक्षा के लिए पूरा समर्थन और बुनियादी ढांचा नहीं मिल पाता. ऐसे में वो पढ़ने वाले बच्चों की अलग-अलग ज़रूरतों का जवाब देने में कठिनाई महसूस करते हैं. इससे दिव्यांग बच्चे पढ़ाई की प्रक्रिया से खुद को और अलग-थलग पाते हैं.

इससे जुड़ी एक चिंता है विशेष शिक्षकों की हालत और उनकी भूमिका. साथ ही दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के लिए टीचर ट्रेनिंग भी. विशेष स्कूलों में दिव्यांग बच्चों की पढ़ाई का काम विशेष शिक्षकों को सौंपा गया है. शिक्षक अक्सर दिव्यांग बच्चों को पढ़ाने के लिए खुद को तैयार नहीं पाते हैं. साथ ही उन्हें समावेशी शिक्षा के लिए पूरा समर्थन और बुनियादी ढांचा नहीं मिल पाता. ऐसे में वो पढ़ने वाले बच्चों की अलग-अलग ज़रूरतों का जवाब देने में कठिनाई महसूस करते हैं. इससे दिव्यांग बच्चे पढ़ाई की प्रक्रिया से खुद को और अलग-थलग पाते हैं. सरकार के विशेष शिक्षक मुश्किल हालात में काम करते हैं और अक्सर उन पर पढ़ाई के अलावा दूसरे कामों का बोझ डाला जाता है.

नई शिक्षा नीति में आम शिक्षकों के लिए दूसरी विशेषज्ञता के तौर पर विशेष शिक्षा की ट्रेनिंग का प्रावधान है. एक महत्वपूर्ण नीतिगत सिफ़ारिश ये होगी कि पूरे शैक्षणिक परिदृश्य में विशेष शिक्षकों की अहमियत को मान्यता दी जाए और उनका दर्जा नियमित शिक्षकों के बराबर हो. नई शिक्षा नीति में एक महत्वपूर्ण क़दम नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन और रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इंडिया के बीच ज़्यादा सामंजस्य रखने का लक्ष्य होना चाहिए ताकि सुनिश्चित किया जाए कि विशेष शिक्षकों और नियमित शिक्षकों के पास वो हुनर हों जिससे वो समावेशी क्लासरूम कार्यप्रणाली को लागू कर सकें. पाठ्यक्रम में बदलाव के लिए दिव्यांग व्यक्तियों की अधिकारिता के विभाग के तहत आने वाले नेशनल इंस्टीट्यूट से मशविरे का प्रावधान सही दिशा में उठाया गया एक क़दम है.

लक्ष्य आधारित नीतिगत हस्तक्षेप के लिए सही आंकड़ों का होना अनिवार्य है. इसके लिए दिव्यांगों की संख्या को कम करके पेश करने की कोशिश का मुक़ाबला होना चाहिए. इसमें बच्चों के कामकाज को लेकर वॉशिंगटन ग्रुप/UNICEF मॉड्यूल जैसे डाटा कलेक्शन सिस्टम का इस्तेमाल होना चाहिए.

नई शिक्षा नीति ख़ास दिव्यांगता की पहचान में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका को भी मानती है. लेकिन इसमें सिर्फ़ एक ख़ास तरह की सीखने में दिव्यांगता को ही शामिल किया गया है. दूसरी तरह की दिव्यांगता को इसमें पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया है. भारत में समावेशी शिक्षा पर नीतिगत संवाद में आम तौर पर एकीकरण और समावेश को लेकर असमंजस है. इसमें मौजूदा परंपराओं पर सवाल उठाने और उनके मूल्यांकन की जगह दिव्यांग बच्चों को सिस्टम में मिलाने पर ज़ोर दिया गया है. ये दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा की क्वालिटी और पढ़ाई के नतीजों को नज़रअंदाज़ करने और घर पर पढ़ाई के मॉडल पर लगातार ज़िद से साफ़ है. समावेशी पढ़ाई को सिस्टम आधारित परंपरा की तरह बनाना है ना कि दिव्यांग बच्चों के लिए विशेष सेवा की तरह देखना है. ऐसा करने के लिए ज़्यादा बजट आवंटन और अंतर-मंत्रालय मेलजोल की ज़रूरत है.

इसके अलावा लक्ष्य आधारित नीतिगत हस्तक्षेप के लिए सही आंकड़ों का होना अनिवार्य है. इसके लिए दिव्यांगों की संख्या को कम करके पेश करने की कोशिश का मुक़ाबला होना चाहिए. इसमें बच्चों के कामकाज को लेकर वॉशिंगटन ग्रुप/UNICEF मॉड्यूल जैसे डाटा कलेक्शन सिस्टम का इस्तेमाल होना चाहिए. ये भी महत्वपूर्ण है कि दिव्यांग बच्चों की पढ़ाई के मूल्यांकन के लिए रूप-रेखा को डिज़ाइन करना चाहिए और पढ़ाई-सीखने की प्रक्रिया से उनके अलग होने का समाधान करना चाहिए. ये साबित हो चुका है कि समावेशी शिक्षा की आदत दिव्यांग और गैर-दिव्यांग- दोनों तरह के बच्चों के लिए फ़ायदेमंद है. इससे दी जाने वाली शिक्षा की क्वालिटी बेहतर होती है. इसलिए मौजूदा परंपराओं के मूल्यांकन के साथ-साथ भागीदारों से ज़्यादा सामंजस्य को भी अमल में लाना चाहिए ताकि सबके लिए समावेशी और क्वालिटी शिक्षा की प्रतिबद्धता का सम्मान किया जा सके.

दिव्या गोयल ओआरएफ मुंबई में एक रिसर्च इंटर्न हैं.

साभार https://www.orfonline.org/hindi/ से